Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XV, Issue No. 3, May-2018, ISSN 2230-7540

कबीर की सामाजिक चेतना

Krishna Devi*

Research Scholar, Department of Hindi, Maharishi Dayanand University, Rohtak, Haryana

---------------------------------x---------------------------------

संत कबीर निर्गुण मत के अनुयायी कवि है। भक्ति काल में निर्गुण भक्तों में कबीर को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। भारतभूमि जो अनेक रत्नों की खान रही है उन्हीं महान् रत्नों में से एक थे संत कबीर। कबीर का अरबी भाषा में अर्थ है - महान्। वे भक्त और कवि बाद में थे, पहले समाज सुधारक थे। वे सिकन्दर लोदी के समकालीन थे। कबीर की भाषा सधुक्कड़ी थी तथा उसी भाषा में कबीर ने समाज में व्याप्त अनेक रूढ़ियों का खुलकर विरोध किया है। हिन्दी साहित्य में कबीर के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। रामचन्द्र शुक्ल ने भी उनकी प्रतिभा मानते हुए लिखा है "प्रतिभा उनमें बड़ी प्रखर थी।"[1]

कबीर के समय में देश संकट की घड़ी से गुजर रहा था। सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह से डगमगाई हुई थी। अमीर वर्ग, वैभव-विलासिता का जीवन जी रहा था, वहीं गरीब दो वक्त की रोटी के लिए तरस रहा था। हिन्दू और मुस्लिम के बीच जाति-पांति, धर्म और मजहब की खाई गहरी होती जा रही थी। एक महान क्रान्तिकारी कवि होने के कारण उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों, बुराईयों को उजागर किया। संत कबीर भक्तिकालीन एकमात्र ऐसे कवि थे जिन्होंने राम-रहीम के नाम पर चल रहे पाखंड, भेद-भाव, कर्म-कांड को व्यक्त किया था। आम आदमी जिस बात को कहने क्या सोचने से भी डरता था, उसे कबीर ने बड़े निडर भाव से व्यक्त किया था। कबीर ने अपनी वाणी द्वारा समाज में व्याप्त अनेक बुराईयों को दूर करने का प्रयास किया। उनके साहित्य में समाज सुधार की जो भावना मिलती है। उसे हम इस प्रकार से देख सकते हैं।

धार्मिक पाखण्ड का विरोध करते हुए कबीर कहते हैं भगवान को पाने के लिए हमें कहीं जाने की जरूरत नहीं है। वह तो घट-घट का वासी है। उसे पाने के लिए हमारी आत्मा शुद्ध होनी चाहिए। भगवान न तो मंदिर में है, न मस्जिद में है। वह तो हर मनुष्य में है।

"**कस्तुरी कुण्डली बसै, मृग ढूंढें बन माँहि।**

एसै घटि घटि राम हैं, दुनियाँ देखै नाँहि।।[2]

"माला फेरत जुग गया, गया न मन फेर,

कर का मनका डारि के मन का मनका फेर।"[3]

कबीर ने मूर्ति पूजा की भी कड़े शब्दों में निंदा की है। अगर पत्थर पूजने से भगवान मिलता है तो मैं तो पूरे पहाड़ को ही पूजने लग जाऊंगा।

"कबीर पाथर पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहार।

घर की चाकी कोउ न पूजै, जा पीसा खाए संसार।।"4

कबीर जी हिंसा का विरोध करते हैं। एक जीव दूसरे जीव को खाता है तो कबीर को बहुत ही टीस होती है। वे उन्हें समझाते हुए कहते हैं -

बकरी पाती खात है, ताकी काठी खाल,

जो नर बकरी खात है, तिनको कौन हवाल।"

कबीर के अनुसार, जिसमें प्रेम, दया व करूणा भावना है वही सबसे बड़ा ज्ञानी है। बड़े-बड़े ज्ञानी भी प्रेम भावना के बिना मूर्ख के समान है।

"पोथी पढ़ी-पढ़ी जग मुआ पंडित भया न कोय।

ढाई आखर प्रेम का पढ़े, सो पंडित होय"।[5]

साथ ही कबीर जी मनुष्य को समझाते हुए कहते हैं कि यह मनुष्य जीवन क्षण-भर के लिए है। इस पर हमें घमण्ड नहीं करना चाहिए। यह तो पानी के बुलबुले के समान पल में नष्ट हो जाएगा। हमें इसे अच्छे कर्मों में लगाना चाहिए।

"पानी केरा बुदबुदा, उस मानस की जाति।

www.ignited.in

एक दिनाँ छिप जाता है, जो तारा प्रभात।"[6]

कबीर ने समाज में व्याप्त जाँति-पाँति व ऊँच-नीच की भी कड़े शब्दों में निंदा की है। वे मनुष्य के ज्ञान व कर्म को महान मानते हुए कहते हैं -

"जाँति न पूछो साधा की पूछ लीजिए ज्ञान।

मोल करो तलवार का पड़ा रहने दो म्यान।"[7]

कबीर ने गुरू को बहुत महत्व दिया है। उनकी अहम् प्रेरणा का मूल स्त्रोत उनके गुरू ही थे जिनकी कृपा से उन्होंने सभी संकीर्ण बन्धनों को तोड़ा, वे स्वतन्त्र-चिन्तक, उन्होंने बहुत-सी ज्ञानपूर्ण सच्चाईयों को सामान्य जन तक पहुँचाया, आत्म-ज्ञान प्राप्त करना, मूल सत्य से परिचित होना, इस सब कार्यों की प्रेरणा देने वाले उनके गुरू ही थे। वही इस मार्ग को बताने वाले थे।

"सतगुर की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार,

लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावण हार।।"[8]

कबीर ने गुरू को परमात्मा से भी बड़ा दर्जा दिया है तथा वो कहते हैं कि गुरू ही की भक्ति के द्वारा हमें परमात्मा मिलते हैं। वो कहते हैं -

गुरू गोबिन्द दोउ खड़े, काकै लागू पाय।

बलिहारी गुरू आपने, गोबिन्द दियो बताय।

X X X

सतगुरू हमसे रीझकर, एक कहा परसंग।

बरसा बादल पे्रम का, भीज गया सब अंग।"[9]

कबीर ने नारी की निंदा की है। उन्होंने नारी को भक्ति के मार्ग में बाधा माना है। नारी को माया स्वरूप माना है -

"नारी कीझांई परै, अंधा होत भुजंग।

कबीर तिन की कौन गति, जो नित नारी के संग।।"[10]

कबीर जी नाथ योग से प्रभावित थे। इसी कारण उन्होंने नारी को माया स्वरूप माना है तथा साथ ही उन्होंने पतिव्रता नारी की भूरी-भूरी प्रशंसा भी की है।

"पतिव्रता मैली भली, काली कुचित कुरूप।

वाकै एके रूप पर, वारूं कोटि स्वरूप।।"[11]

धार्मिक सुधार ओर समाज सुधार का घनिष्ठ सम्बन्ध है। धर्म सुधारक को समाज सुधारक होना पड़ता है। कबीर ने भी समाज सुधार के लिए अपनी वाणी का उपयोग किया है। कबीर के अनुसार जन्म से ही कोई द्विज या शूद्र अथवा हिन्दू व मुसलमान नहीं हो सकता। इसको कबीर ने कितने सीधे किन्तु मन में रखने वाले ढंग से कहा है -

"जौ तूँ बाँभन बंभनी जाया। तो आन वाट है क्यों नहिं आया।।

जौ तूँ तुरक तुरकनी का जाया। तौ भीतर खतना क्यों न कराया।।"[12]

कबीर ने उच्चता और नीचता का संबंध व्यवसाय के साथ नहीं जोड़ा है क्योंकि कोई व्यवसाय नीचा नहीं है। अपने को जुलाहा कहने में भी उनहोंने कहीं संकोच नहीं किया और वे स्वयं भी जीवनभर ये काम करते रहते। वे उन ज्ञानियों में से नहीं थे जो हाथ पांव समेट कर पेट भरने के लिए समाज के ऊपर भार बनकर रहते हैं। वे परिश्रम का महत्व जानते थे और आजीविका के लिए ही जुलाहे का काम करते रहे।

कबीर जी धन सम्पत्ति जोड़ना भी उचित नहीं समझते थे। उन्होंने थोड़े में ही संतोष करने का उपदेश दिया है। कबीर जी ने आगे की पीढ़ी के लिए भी धन का संचय न करने का उपदेश दिया है - क्योंकि वे जानते थे कि अगर संतान अच्छी व संस्कारी है तो उसके लिए धन की जरूरत नहीं है। अगर संतान आलसी है तो वह सारे संचित धन को बेकार में व्यर्थ कर देगा। इसलिए कबीर ने कहा है -

पूत कपूत तो क्यों धन संचय

पूत सपूत तो क्यों धन संचय।

कबीरदास जी ने सुकर्म के साथ-साथ लोगों को उद्यम करने का भी उपदेश दिया है जिससे आर्थिक तंगी से निपटा जा सके और पेट भरने के लिए किसी दूसरे पर निर्भर ना रहें।

परिश्रम करने की शिक्षा देने का कबीर जी का मकसद गरीबों की गरीबी दूर करना तो था ही, साथ में देश व समाज की उन्नति करने से भी था। इसलिए कबीर कहते थे -

"कबीर उद्यम अवगुण को नहीं, जो करि जाने कोय।

उद्यम में आनन्द है, सांई सेती होय।।"[13]

उन्होंने जीवन को क्षण भंगुर बता कर, लोगों को भक्ति और मानव सेवा का फल प्राप्त करने व साथ ही मनुष्य को दुष्कर्म करने के प्रति भी सचेत किया है।

"पानी केरा बुदबुदा, अस मानुस की नात,

एक दिना छिप जाएगा, ज्यों तारा परभात।"[14]

इसमें कबीर ने मनुष्य के शरीर को क्षण भंगुर कहा है कि जिस प्रकार पानी का बुलबुला क्षण मंे ही नष्ट हो जाता है उसी प्रकार मनुष्य शरीर भी पल में नष्ट हो जाएगा। इसलिए हमें अच्छे कर्म करने चाहिए।

डॉ. पारसनाथ तिवारी लिखते हैं "सच्ची बात यह है कि हिन्दी साहित्य में कबीर से बड़ा मानवतावादी कोई नहीं हुआ। उन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित समस्त अंधविश्वासों, रूढ़ियों तथा मिथ्या सिद्धान्तों द्वारा प्रचारित सामाजिक विषमताओं का मूलोच्छेद करने का बीड़ा उठाया और निर्भयता पूर्वक पाखंडों पर प्रहार किया।"[15] उनकी सबसे बड़ी विशेषता एकत्व की भावना का समर्थन है। डॉ. रामजीलाल के अनुसार – "कबीर ने सामाजिक विषमता को मिटाकर एकत्व की स्थापना का निश्चय किया। कबीर को प्रगतिशील कहने में हमें कोई संकोच नहीं होना चाहिए। पाँच सौ-छः सौ वर्ष पूर्व कही गई बात आज भी प्रासंगिक व सम-सामयिक है।" कबीर ने व्यक्ति व समाज को एक दूसरे का पूरक माना है। इस तरह से कबीर भक्त, योगी व दार्शनिक होने के साथ-साथ समाज सुधारक भी थे। कबीर ने समाज सुधार के लिए प्रबल प्रयत्न कर तत्कालीन समाज को अंधकार से निकालने का भरसक प्रयास किया।

इस तरह से कबीर ने जीवन के सभी पहलुओं में झांका है। उनकी वाणियों में सम्पूर्ण जीव जगत के लिए कल्याण का मार्ग झलकता था जो आज भी समाज के लिए दर्पण का काम करता है। कबीरदास का जीवन, मानवीय गुणों से ओत-प्रोत था, वे सभी जीवों को समदृष्टि से देखते थे, किसी व्यक्ति विशेष की न तो कभी निन्दा करते थे और न ही स्तुति। वे उस व्यक्ति व समाज की बुराईयों की खुलकर निंदा करते थे, जिनमें उनको आडम्बर, पाखण्ड व ढोंग नजर आता था, ऐसे में वो खुलकर बोलते थे -

हिन्दू के दया नहीं, मेहर तुरक के नाहिं।

कहें कबीर दोनों गए, लख चैरासी माहिं।।

कबीर लोक कल्याणकारी भावना के प्रबल समर्थक थे। वे अहंकारियों का विरोध कर निम्न वर्गीय लोगों के पक्षधर थे। वे कहते हैं -

दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय।

मुई खाल की सांस सो, लोह भसम हो जाय।।

कबीर जी स्वयं एक गृहस्थ थे, इसलिए वे गृहस्थ व वैरागी दोनों को समान आदर देते थे -

"बैरागी विरक्त भला, गिरही चित्त उदार।

दूहूं चूका रीता पड़े, ताकूं बार न पार।।"

कबीर जी पूरे विश्व को एक कुटुम्ब मानते हैं। इसलिए वे पूरे विश्व का ही सुधार चाहते हैं -

"सीलवन्त सबसे बड़ा, सर्व रतन की खानि

तीन लोक की संपदा, रही सील में आनि।।"

अतः हम कह सकते हैं कि कबीर अपने समय एवं समाज के कटु आलोचक ही नहीं समाज को लेकर स्वप्न द्रष्टा भी थे। उनके मन में भारतीय समाज का एक प्रारूप था जिस पर वे एक विजन के साथ काम कर रहे थे। "वे मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे। वे हिन्दू होकर भी हिन्दू नहीं थे। साधु होकर भी योगी नहीं थे, वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे।"[16]

इस प्रकार कबीर का अपने समाज के प्रति दृष्टिकोण वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित था, वो किसी प्रकारके बाह्य आडंबर तथा शोषण के खिलाफ खड़े थे। इस संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा भी है कि "कबीरदास ऐसे ही मिलन बिन्दु पर खड़े थे, जहाँ एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता था, दूसरी ओर मुसलमान, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है, दूसरी ओर अशिवा, जहाँ एक ओर ज्ञान भक्ति मार्ग निकल जाता है, दूसी ओर योगमार्ग, जहाँ एक ओर निर्गुण भावना निकल जाती है, दूसरी ओर सगुण साधना। उसी प्रशस्त चैराहे पर वे खड़े थे। वे दोनों को देख सकते थे और परस्पर विरूद्ध दिशा में गये मार्गों के गुण दोष उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे।"[17]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 66, कमल प्रकाशन

श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली, पृ॰ 112

श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली

श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली

माता प्रसाद, कबीर ग्रन्थावली, पृ॰ 65

डॉ. पारसनाथ तिवारी, कबीर वाणी संग्रह, पृ॰ 1749, छटा संस्करण 1978

श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली

श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली, पृ॰ 59

श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली

श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रन्थावली

माता प्रसाद, कबीर ग्रन्थावली

डॉ. पारसनाथ तिवारी, कबीर वाणी संग्रह

13 जयदेव सिंह, कबीर वाणी पीयूष, पृ॰ 133

डॉ. पारसनाथ तिवारी, कबीर वाणी संग्रह, पृ॰ 179, छटा संस्करण 1978

डॉ. पारसनाथ तिवारी, कबीर वाणी संग्रह

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का उद्भव व विकास, पृ॰ 77

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ॰ 77-78

Corresponding Author

Krishna Devi*

Research Scholar, Department of Hindi, Maharishi Dayanand University, Rohtak, Haryana

E-Mail – narendersuhag2016@gmail.com